CHAPTER पचहत्तर
दुर्योधन का मानमर्दन

इस अध्याय में राजसूय यज्ञ के भव्य समापन तथा राजा युधिष्ठिर के महल में राजकुमार दुर्योधन के मानमर्दन का वर्णन हुआ है।

महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय उनके अनेक सम्बन्धियों तथा हितैषियों ने आवश्यक सेवाएँ करके उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास किया। जब यज्ञ पूर्ण हो गया, तो राजा ने पुरोहितों, उच्च सभासदों तथा अपने सम्बन्धियों को सुगन्धित चन्दन-लेप, फूल-मालाओं तथा उत्तम वस्त्रों से अलंकृत किया। तत्पश्चात् सारे लोग यमुना नदी के तट पर यज्ञ के बाद स्नान-कृत्य सम्पन्न करने गये, जो यजमान के यज्ञ की अवधि के समापन का सूचक है। इस अन्तिम स्नान के पूर्व पुरुषों तथा स्त्रियों ने जल-क्रीड़ा का आनन्द लिया। सुगन्धित जल तथा अन्य द्रव से छिड़के जाने के कारण द्रौपदी तथा अन्य स्त्रियाँ अत्यन्त सुन्दर लग रही थीं और उनके मुख सलज्ज हास से चमक रहे थे।

जब पुरोहितगण अन्तिम अनुष्ठान सम्पन्न करा चुके, तो राजा तथा उनकी रानी श्रीमती द्रौपदी ने यमुना में स्नान किया। तत्पश्चात् वर्णाश्रम-धर्म के मानने वाले वहाँ पर उपस्थित सबों ने स्नान किया। युधिष्ठिर ने नये वस्त्र पहने और विद्वान ब्राह्मणों, अपने परिवारवालों, मित्रों तथा हितैषियों की यथोचित पूजा की और उन्हें विविध उपहार दिये। तत्पश्चात् सारे अतिथि अपने अपने घरों को विदा हो गये। किन्तु राजा युधिष्ठिर अपने प्रियजनों के आसन्न वियोग से इतने चिन्तित थे कि उन्होंने अपने कई सम्बन्धियों तथा कृष्ण समेत अनेक घनिष्ठ मित्रों को इन्द्रप्रस्थ में कुछ दिन और रुके रहने के लिए बाध्य कर दिया।

राजा युधिष्ठिर का राजमहल मय दानव द्वारा बनाया गया था, जिसने इसे अनेक अद्‌भुत गुणों तथा ऐश्वर्यों से युक्त कर दिया था। जब राजा दुर्योधन ने यह ठाट-बाट देखा, तो वह ईर्ष्या से जलने लगा। एक दिन युधिष्ठिर कृष्ण के साथ अपने सभाभवन में बैठे थे। अपने अनुचरों तथा परिवारजनों के द्वारा सेवित उनकी भव्यता राजा इन्द्र के समान प्रदर्शित हो रही थी। उसी समय दुर्योधन उन्मत्तावस्था में उस सभाभवन में प्रविष्ट हुआ। मयदानव की योग शिल्पकला से मोहग्रस्त दुर्योधन ने ठोस फर्श के कुछ भाग को जल समझ कर अपने वस्त्र उठा लिये और एक स्थान को ठोस फर्श समझ कर वह जल में गिर गया। जब भीमसेन, दरबार की महिलाओं तथा राजकुमारों ने यह देखा, तो सभी हँसने लगे।

यद्यपि महाराज युधिष्ठिर ने उन्हें रोकने का प्रयास किया, किन्तु भगवान् कृष्ण ने इस हँसी को प्रोत्साहित किया। दुर्योधन पूरी तरह क्षुब्ध होकर क्रोधवश सभाभवन से निकल आया और उसने तुरन्त हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान कर दिया।

श्रीराजोवाच
अजातशत्रोस्तम्दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ।
सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥
दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः ।
इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (परीक्षित) ने कहा; अजात-शत्रोः—युधिष्ठिर का, जिसके शत्रु जन्मे ही नहीं; तम्—उसको; दृष्ट्वा—देख कर; राजसूय—राजसूय यज्ञ का; महा—महान्; उदयम्—उत्सव; सर्वे—सभी; मुमुदिरे—प्रसन्न थे; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण (शुकदेव); नृ-देवाः—राजागण; ये—जो; समागताः—एकत्र हुए; दुर्योधनम्—दुर्योधन को; वर्जयित्वा—छोड़ कर, के अतिरिक्त; राजानः—राजा; स—सहित; ऋषयः—ऋषिगण; सुराः—तथा देवतागण; इति—इस प्रकार; श्रुतम्—सुना हुआ; नः—हमारे द्वारा; भगवन्—हे प्रभु; तत्र—उस; कारणम्—कारण को; उच्यताम्—कृपया कहें या बतलायें।

महाराज परीक्षित ने कहा : हे ब्राह्मण, मैंने आपसे जो कुछ सुना उसके अनुसार, एकमात्र दुर्योधन के अतिरिक्त, वहाँ एकत्रित समस्त राजा, ऋषि तथा देवतागण अजातशत्रु राजा के राजसूय यज्ञ के अद्भुत उत्सव को देख कर परम हर्षित थे। हे प्रभु, कृपा करके मुझसे कहें कि ऐसा क्यों हुआ?

श्रीबादरायणिरुवाच
पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ।
बान्धवाः परिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबन्धनाः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-बाडरायनिः उवाच—श्री बादरायणि (शुकदेव गोस्वामी) ने कहा; पितामहस्य—दादा के; ते—तुम्हारे; यज्ञे—यज्ञ में; राजसूये—राजसूय; महा-आत्मनः—महात्मा के; बान्धवाः—पारिवारिक जन; परिचर्यायाम्—विनीत सेवा में; तस्य—उसकी; आसन्—स्थित थे; प्रेम—प्रेम से; बन्धनाः—बँधे हुए।

श्री बादरायणि ने कहा : तुम्हारे सन्त सदृश दादा के राजसूय यज्ञ में उनके प्रेम से बँधे हुए उनके पारिवारिक सदस्य उनकी ओर से विनीत सेवा-कार्य में संलग्न थे।

तात्पर्य : राजा युधिष्ठिर ने यज्ञ के अवसर पर किसी भी सम्बन्धी को किसी काम में लगने के लिए बाध्य नहीं किया प्रत्युत वे सब उनके प्रेमवश, स्वेच्छा से ऐसे कार्यों में लगे हुए थे।

भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः ।
सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४॥
गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ।
परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५॥
युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः ।
बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च सन्तर्दनादयः ॥ ६॥
निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा ।
प्रवर्तन्ते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७॥

शब्दार्थ

भीमः—भीम; महानस—रसोई का; अध्यक्षः—निरीक्षक; धन—कोश का; अध्यक्षः—निरीक्षक; सुयोधनः—सुयोधन (दुर्योधन); सहदेवः—सहदेव; तु—और; पूजायाम्—(अतिथियों के आने पर) पूजा करने में; नकुलः—नकुल; द्रव्य—आवश्यक सामग्री; साधने—प्राप्त करने में; गुरु—सम्माननीय गुरुजनों के; शुश्रूषणे—सेवा करने में; जिष्णुः—अर्जुन; कृष्णः—कृष्ण; पाद—पाँव; अवनेजने—धोने में; परिवेषणे—(भोजन) परोसने में; द्रुपद-जा—द्रुपद की पुत्री (द्रौपदी); कर्णः—कर्ण; दाने—दान देने में; महामनाः—उदार; युयुधानः विकर्णः च—युयुधान तथा विकर्ण; हार्दिक्यः विदुर-आदयः—हार्दिक्य (कृतवर्मा), विदुर तथा अन्य; बाह्लीक-पुत्राः—बाह्लीक राजा के पुत्र; भूर्-आद्याः—भूरिश्रवा इत्यादि; ये—जो; च—तथा; सन्तर्दन-आदयः—सन्तर्दन तथा अन्य; निरूपिताः—संलग्न; महा—विस्तीर्ण; यज्ञे—यज्ञ में; नाना—विविध; कर्मसु—कामों में; ते—वे; तदा—उस समय; प्रवर्तन्ते स्म—पूरा किया; राज-इन्द्र—हे राजश्रेष्ठ (परीक्षित); राज्ञः—राजा (युधिष्ठिर) के; प्रिय—प्रिय; चिकीर्षवः—करने की इच्छा से।

भीम रसोई की देख-रेख कर रहे थे, दुर्योधन कोष की देखभाल कर रहा था और सहदेव अतिथियों के सादर स्वागत में लगे थे। नकुल सारी सामग्री जुटा रहे थे, अर्जुन गुरुजनों की सेवा में रत थे जबकि कृष्ण हर एक के पाँव पखार रहे थे। द्रौपदी भोजन परोस रही थीं और दानी कर्ण उपहार दे रहे थे। अन्य अनेक लोग यथा युयुधान, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर, भूरिश्रवा तथा बाह्लीक के अन्य पुत्र एवं सन्तर्दन भी उस विशाल यज्ञ में विविध कार्यों में स्वेच्छा से लगे हुए थे। हे राजश्रेष्ठ, उन्होंने महाराज युधिष्ठिर को प्रसन्न करने की अपनी उत्सुकता से ही ऐसा किया।

ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु
स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ।
चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे
चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८॥

शब्दार्थ

ऋत्विक्—पुरोहित; सदस्य—यज्ञ में सहायता करने वाले सदस्य; बहु-वित्सु—अत्यंत विद्वान; सुहृत्-तमेषु—तथा सर्वश्रेष्ठ हितैषीजन; सु—भलीभाँति; इष्टेषु—सम्मानित; सूनृत—मधुर शब्दों से; समर्हण—शुभ भेंटें; दक्षिणाभिः—तथा दक्षिणा से; चैद्ये—चेदि के राजा (शिशुपाल); च—तथा; सात्वत-पतेः—सात्वतों के स्वामी (कृष्ण); चरणम्—पाँवों में; प्रविष्टे—प्रविष्ट होकर; चक्रुः—पूरा किया; ततः—तब; तु—तथा; अवभृथ-स्नपनम्—अवभृथ स्नान, जिससे यज्ञ पूर्ण हुआ; द्यु—स्वर्ग की; नद्याम्—नदी में (यमुना में)।

जब सारे पुरोहित, प्रमुख प्रतिनिधि, विद्वान सन्त तथा राजा के घनिष्ठ हितैषी मधुर शब्दों,

शुभ उपहारों तथा विविध भेंटों रूपी दक्षिणा से भलीभाँति सम्मानित किये जा चुके और जब चेदिराज सात्वतों के प्रभु के चरणकमलों में प्रविष्ट हो चुका, तो दैवी नदी यमुना में *अवभृथ* स्नान सम्पन्न किया गया।

तात्पर्य : प्रमुख अतिथियों को दिये गये उपहारों में बहुमूल्य आभूषण भी थे।

मृदङ्गशङ्खपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः ।
वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

मृदङ्ग—मृदंग; शङ्ख—शंख; पणव—छोटे ढोल; धुन्धुरि—बृहद् सैनिक ढोल; आनक—नगाड़ा; गो-मुखाः—एक वाद्य; वादित्राणि—संगीत; विचित्राणि—विविध; नेदुः—बज उठे; आवभृथ—अवभृथ स्नान के; उत्सवे—उत्सव में।

***अवभृथ* स्नानोत्सव के समय अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, जिनमें मृदंग, शंख, पणव, धुन्धुरि, आनक तथा गोमुख थे।**

नार्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ।
वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

नार्तक्यः—नर्तकियाँ; ननृतुः—नाचीं; हृष्टाः—प्रसन्नचित्त; गायकाः—गाने वालों ने; यूथशः—टोलियों में; जगुः—गाया; वीणा—वीणा; वेणु—वंशी; तल—तथा मंजीरे की; उन्नादः—तेज आवाज; तेषाम्—उनकी; सः—वह; दिवम्—स्वर्ग को; अस्पृशत्—छूने लगी।

नर्तकियों ने अत्याधिक मुदित होकर नृत्य किया, गायकों ने सामूहिक रूप में गाया और वीणा, वंशी तथा मंजीरे की तेज आवाज बहुत दूर स्वर्गलोक तक पहुँच गई।

चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनार्वभिः ।
स्वलङ्कृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

चित्र—रंगबिरंगी; ध्वज—झंडियाँ; पताक—तथा झंडे; अग्रैः—उत्तम; इभ—हाथियों से; इन्द्र—राजसी; स्यन्दन—रथ; अर्वभिः—तथा घोड़ों से; सु-अलङ्कृतैः—खूब सजे; भटैः—पैदल सिपाहियों सहित; भू-पाः—राजागण; निर्ययुः—चल पड़े; रुक्म—सोने के; मालिनः—हार पहने।

तब सोने के हार पहने हुए सारे राजा यमुना नदी की ओर चल पड़े। उनके साथ रंग-बिरंगे झंडे तथा पताकाएँ थीं और उनके साथ साथ पैदल सेना एवं शाही हाथियों, रथों तथा घोड़ों पर सवार सुसज्जित सिपाही थे।

यदुसृञ्जयकाम्बोजकुरुकेकयकोशलाः ।
कम्पयन्तो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यदु-सृञ्जय-काम्बोज—यदुगण, सृञ्जयगण तथा काम्बोजगण; कुरु-केकय-कोशलाः—कुरुवासी, केकयवासी तथा कोशलवासी; कम्पयन्तः—हिलाते हुए; भुवम्—पृथ्वी को; सैन्यैः—अपनी सेनाओं से; यजमान—यज्ञ करने वाला (महाराज युधिष्ठिर); पुरः-सराः—आगे आगे करके।

जुलूस में यजमान युधिष्ठिर महाराज के पीछे पीछे चल रहीं यदुओं, सृंजयों, काम्बोजों, कुरुओं, केकयों तथा कोशलवासियों की समुञ्चित सेनाओं ने धरती को हिला दिया।

सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा ।
देवर्षिपितृगन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सदस्य—सदस्य; ऋत्विक्—पुरोहित; द्विज—तथा ब्राह्मण; श्रेष्ठाः—श्रेष्ठ; ब्रह्म—वेदों के; घोषेण—ध्वनि से; भूयसा—प्रचुर; देव—देवता; ऋषि—ऋषिगण; पितृ—पुरखे; गन्धर्वाः—तथा स्वर्ग के गवैयों ने; तुष्टुवुः—यशोगान किया; पुष्प—फूलों की; वर्षिणः—वर्षा करते हुए।

सभासदों, पुरोहितों तथा अन्य उत्तम ब्राह्मणों ने जोर-जोर से वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया, जबकि देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा गन्धर्वों ने यशोगान किया और फूलों की वर्षा की।

स्वलण्कृता नरा नार्यो गन्धस्त्रग्भूषणाम्बरैः ।
विलिम्पन्त्योऽभिसिञ्चन्त्यो विजह्रुर्विविधै रसैः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

सु-अलङ्कृताः—अच्छी तरह सजे-धजे; नराः—पुरुष; नार्यः—तथा स्त्रियाँ; गन्ध—चन्दन-लेप; स्रक्—फूल की मालाओं; भूषण—आभूषणों; अम्बरैः—तथा वस्त्रों से; विलिम्पन्त्यः—चुपड़ कर; अभिषिञ्चन्त्यः—तथा छिड़क कर; विजह्रुः—खेलने लगे; विविधैः—विविध; रसैः—तरल पदार्थों से।

चन्दन-लेप, पुष्प-मालाओं, आभूषण तथा उत्तम वस्त्र से सज्जित सारे पुरुषों तथा स्त्रियों ने विविध द्रवों को एक-दूसरे पर मल कर तथा छिड़क कर खूब खिलवाड़ किया।

तैलगोरसगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुङ्कुमैः ।
पुम्भिर्लिप्ताः प्रलिम्पन्त्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तैल—वानस्पतिक तेल; गो-रस—दही; गन्ध-उद—सुगन्धित जल; हरिद्रा—हल्दी; सान्द्र—प्रचुर; कुङ्कुमैः—तथा सिंदूर से; पुम्भिः—पुरुषों द्वारा; लिप्ताः—लपेटे हुए; प्रलिम्पन्त्यः—उलट कर पोतते हुए; विजह्रुः—खिलवाड़ किया; वार-योषितः—वारांगनाओं ने।

पुरुषों ने वारांगनाओं के शरीरों को बहुत सारा तेल, दही, सुगन्धित जल, हल्दी तथा कुंकुम चूर्ण से पोत दिया और पलटकर उन स्त्रियों ने पुरुषों के शरीरों में वैसी ही वस्तुएँ दे पोतीं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने इस दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है : ''इन्द्रप्रस्थ के पुरुषों एवं स्त्रियों के शरीर विभिन्न प्रकार के इत्र एवं पुष्प-तेलों से चुपड़े थे। वे सभी सुन्दर-सुन्दर रंगीन वस्त्र धारण किये थे और मालाओं, रत्नों तथा आभूषणों से अलंकृत थे। वे सभी उस समारोह का आनन्द उठा रहे थे और एक-दूसरे पर जल, तेल, दूध, मक्खन एवं दही जैसे तरल पदार्थों को फेंक रहे थे। कुछ लोगों ने तो इन पदार्थों को एक-दूसरे के शरीर पर पोत डाला। इस प्रकार वे उत्सव का आनन्द उठा रहे थे। वारांगनाएँ भी आनन्दविभोर होकर इन तरल पदार्थों को पुरुषों के शरीरों पर लगाने में जुटी थीं तथा पुरुष भी स्त्रियों के साथ उसी प्रकार कर रहे थे। सभी तरल पदार्थों से हल्दी एवं केसर में मिलाये गये थे, जिससे उसका रंग चमकदार पीला था।''

गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्
देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यो ।
ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः
सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

गुप्ताः—सुरक्षित; नृभिः—सैनिकों द्वारा; निरगमन्—बाहर गये; उपलब्धुम्—स्वयं देखने के लिए; एतत्—यह; देव्यः—देवताओं की स्त्रियाँ; यथा—जिस तरह; दिवि—आकाश में; विमान—अपने अपने विमानों में; वरैः—श्रेष्ठ; नृ-देव्यः—रानियाँ (युधिष्ठिर की); ताः—वे; मातुलेय—अपने ममेरे भाइयों (कृष्ण तथा उनके भाई यथा गद तथा सारण) द्वारा; सखिभिः—अपने मित्रों (यथा भीम तथा अर्जुन) द्वारा; परिषिच्यमानाः—छिड़के जाकर; स-व्रीड—लज्जित; हास—हँसी से युक्त; विकसत्—प्रफुल्लित; वदनाः—मुख वाली; विरेजुः—भव्य लग रहे थे।

इस तमाशे को देखने के लिए अपने अपने रथों में सवार होकर तथा अंगरक्षकों से घिर कर राजा युधिष्ठिर की रानियाँ बाहर आ गईं, मानों आकाश में दैवी विमानों में देवताओं की पत्नियाँ प्रकट हुई हों। जब ममेरे भाइयों तथा उनके घनिष्ठ मित्रों ने रानियों पर द्रव पदार्थ छिड़के, तो उनके मुख लजीली मुसकान से खिल उठे, जिससे उनके भव्य सौन्दर्य में वृद्धि हो गई।

तात्पर्य : यहाँ पर जिन ममेरे भाइयों का उल्लेख हुआ है, वे कृष्ण तथा उनके भाई गद तथा सारण हैं और जिन मित्रों का उल्लेख है, वे हैं भीम तथा अर्जुन जैसे व्यक्ति।

ता देवरानुत सखीन्सिषिचुर्दृतीभिः
क्लिन्नाम्बरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः ।
औत्सुक्यमुक्तकवराच्च्यवमानमाल्याः
क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः ॥ १७॥

शब्दार्थ

ताः—वे रानियाँ; देवरान्—अपने पति के भाइयों को; उत—तथा भी; सखीन्—उनके मित्रों को; सिषिचुः—भिगो दिया; दृतीभिः—पिचकारियों से; क्लिन्न—भीगे, सराबोर; अम्बराः—वस्त्र; विवृत—दृश्य; गात्र—जिनकी भुजाएँ; कुच—स्तन; ऊरु—जाँघें; मध्याः—तथा कमर; औत्सुक्य—उत्सुकता के कारण; मुक्त—शिथिल; कवरात्—बालों की चोटी से; च्यवमान—फिसलते हुए; माल्याः—फूल की छोटी मालाएँ; क्षोभम्—हिलना-डुलना; दधुः—उत्पन्न किया; मल—गंदी; धियाम्—चेतना वालों के लिए; रुचिरैः—आकर्षक; विहारैः—अपने खेलवाड़ से।

जब रानियों ने अपने देवरों तथा अन्य पुरुष संगियों पर पिचकारियों से पानी दे मारा, तो उनके वस्त्र भीग गये, जिससे उनकी बाँहें, स्तन, जाँघें तथा कमर झलकने लगे। उल्लास में उनके जूड़े ढीले होने से उनमें बँधे फूल गिर गये। इन मनोहारी लीलाओं से उन्होंने उन लोगों को उत्तेजित कर दिया, जिनकी चेतना दूषित थी।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं कि ''शुद्ध नर-नारियों के मध्य ऐसा आचरण आनन्दप्रद होता है, किन्तु जो लोग भौतिक रूप से कलुषित होते हैं, वे कामुक हो उठते हैं।''

स सम्राड्रथमारुढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ।
व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ॥ १८॥

शब्दार्थ

सः—वह; सम्राट्—राजा युधिष्ठिर; रथम्—अपने रथ पर; आरुढः—चढ़ा हुआ; सत्—उत्तम; अश्वम्—घोड़े वाला; रुक्म—सुनहले; मालिनम्—लटकनों से; व्यरोचत—चमक रहा था; स्व-पत्नीभिः—अपनी पत्नियों के साथ; क्रियाभिः—अपने कृत्यों से; क्रतु—यज्ञ का; राट्—राजा (राजसूय); इव—मानो।

गले की सुनहरी झालरों से युक्त उत्तम घोड़ों से खींचे जाने वाले अपने रथ पर आरूढ़ सम्राट अपनी पत्नियों के संग इतने भव्य लग रहे थे, मानों तेजस्वी राजसूय यज्ञ अपने विविध कृत्यों से घिरा हुआ हो।

तात्पर्य : अपनी पत्नियों के साथ राजा युधिष्ठिर ऐसे लग रहे थे, मानो अपने सुन्दर कृत्यों से घिरा साक्षात् राजसूय यज्ञ हो।

पत्नीसम्याजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ।

आचान्तं स्नापयां चक्रुर्गङ्गायां सह कृष्णया ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

पत्नी-संयाज—यज्ञकर्ता तथा उसकी पत्नी द्वारा सम्पन्न अनुष्ठान, जिसमें सोम, त्वष्टा, कुछ देवियों तथा अग्नि का तर्पण सम्मिलित हैं; अवभृथ्यैः—यज्ञ-पूर्ति के लिए किये गये अनुष्ठान; चरित्वा—सम्पन्न करके; ते—वे; तम्—उसको; ऋत्विजः—पुरोहितगण; आचान्तम्—शुद्धि के लिए जल सुड़क कर आचमन करके; स्नापयाम् चक्रुः—उन्हें नहलाया; गङ्गायाम्—गंगा नदी में; सह—साथ साथ; कृष्णया—द्रौपदी के।

पुरोहितों ने राजा से *पत्नी-संयाज* तथा *अवभृथ्य* के अन्तिम अनुष्ठान पूर्ण कराये। तब उन्होंने राजा तथा रानी द्रौपदी से शुद्धि के लिए जल आचमन करने एवं गंगा नदी में स्नान करने के लिए कहा।

देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् ।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

देव—देवताओं की; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ, नगाड़े; नेदुः—बज उठीं; नर—मनुष्यों की; दुन्दुभिभिः—दुन्दुभियों से; समम्—साथ साथ; मुमुचुः—बरसाया; पुष्प—फूलों की; वर्षाणि—वर्षा; देव—देवतागण; ऋषि—ऋषिगण; पितृ—पितरगण; मानवाः—तथा मनुष्यों ने।

देवताओं की दुन्दुभियाँ मनुष्यों की दुन्दुभियों के साथ साथ बज उठीं। देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा मनुष्यों ने फूलों की वर्षा की।

सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः ।
महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

सस्नुः—स्नान किया; तत्र—वहाँ; ततः—इसके बाद; सर्वे—सभी; वर्ण-आश्रम—सारे वृत्तिपरक सामाजिक तंत्र तथा आध्यात्मिक आश्रम; युताः—के; नराः—मनुष्य; महा—अत्यन्त; पातकी—पापी; अपि—भी; यतः—जिससे; सद्यः—तुरन्त; मुच्येत—मुक्त किया जा सके; किल्बिषात्—कल्मष से।

तत्पश्चात् विभिन्न वर्णों तथा आश्रमों से सम्बद्ध नागरिकों ने उस स्थान पर स्नान किया, जहाँ पर स्नान करने से बड़ा से बड़ा पापी भी पापों के फल से तुरन्त मुक्त हो जाता है।

अथ राजाहते क्षौमे परिधाय स्वलङ्कृतः ।
ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणाम्बरैः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; राजा—राजा; अहते—कोरा, बिना पहना; क्षौमे—रेशमी वस्त्र का जोड़ा; परिधाय—पहन कर; सु-अलङ्कृतः—सुन्दर ढंग से सज्जित; ऋत्विक्—पुरोहितगण; सदस्य—सभा के कार्यकारी सदस्य; विप्र—ब्राह्मण; आदीन्—इत्यादि; आनर्च—पूजा की; आभरण—गहनों से; अम्बरैः—तथा वस्त्रों से।

इसके बाद राजा ने नये रेशमी वस्त्र धारण किये और अपने को सुन्दर आभूषणों से अलंकृत किया। तत्पश्चात् उन्होंने पुरोहितों, सभा के सदस्यों, विद्वान ब्राह्मणों तथा अन्य अतिथियों को आभूषण तथा वस्त्र भेंट करके उनका सम्मान किया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''राजा ने न केवल स्वयं वस्त्र धारण किये और अपने आप को अलंकृत किया, अपितु उन्होंने सारे पुरोहितों तथा यज्ञ में भाग लेने वाले सारे लोगों को भी वस्त्र तथा आभूषण प्रदान किये। इस तरह उन्होंने सबों की पूजा की।''

बन्धून्ज्ञातीन्नृपान्मित्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः ।
अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥ २३॥

शब्दार्थ

बन्धून्—दूर के सम्बन्धियों; ज्ञातीन्—परिवार के निकटजनों; नृपान्—राजाओं; मित्र—मित्रों; सुहृदः—तथा शुभचिन्तकों को; अन्यान्—अन्यों को; च—भी; सर्वशः—सभी प्रकार से; अभीक्ष्णम्—निरन्तर; पूजयाम् आस—पूजा की; नारायण-परः—नारायण-भक्त; नृपः—राजा ने।

भगवान् नारायण के प्रति पूर्णतया समर्पित राजा युधिष्ठिर ने अपने सम्बन्धियों, परिवार वालों, अन्य राजाओं, अपने मित्रों, अपने शुभचिन्तकों तथा वहाँ पर उपस्थित सारे लोगों का निरन्तर सम्मान करते रहे।

सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुण्डलस्त्र-
गुष्णीषकञ्चुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ।
नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्ट-
वक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥ २४॥

शब्दार्थ

सर्वे—सभी; जनाः—पुरुष; सुर—देवताओं की तरह; रुचः—तेजस्वी रंग वाले; मणि—मणि; कुण्डल—कान के कुण्डलों से; स्त्रक्—फूल-मालाओं; उष्णीष—पगड़ी; कञ्चुक—ऊपरी वस्त्र, उत्तरीय; दुकूल—रेशमी वस्त्र; महा-अर्घ्य—अत्यन्त कीमती; हाराः—तथा मोती की मालाएँ; नार्यः—स्त्रियाँ; च—तथा; कुण्डल—कुण्डलों की; युग—जोड़ी; अलक-वृन्द—केशराशि (जूड़ा); जुष्ट—सुसज्जित; वक्त्र—मुखड़ों की; श्रियः—सुन्दरता; कनक—सोने की; मेखलया—करधनी से; विरेजुः—चमचमा रही थीं।

वहाँ पर उपस्थित सारे पुरुष देवताओं जैसे चमक रहे थे। वे रत्नजटित कुण्डलों, फूल की मालाओं, पगड़ियों, अंगरखों, रेशमी धोतियों तथा कीमती मोतियों की मालाओं से सज्जित थे। स्त्रियों के सुन्दर मुखड़े उनसे मेल खा रहे कुण्डलों तथा केश-गुच्छों से सुशोभित हो रहे थे और वे सुनहरी करधनियाँ पहने थीं।

अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शुद्राराजानो ये समागताः ॥ २५ ॥
देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ।
पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; ऋत्विजः—पुरोहितगण; महा-शीलाः—उच्च चरित्र वाले; सदस्याः—यज्ञ के अधिकारीगण; ब्रह्म—वेदों के; वादिनः—विशेषज्ञ; ब्रह्म—ब्राह्मण; क्षत्रिय—क्षत्रिय; विट्—वैश्य; शूद्राः—तथा शूद्रगण; आजानः—राजा; ये—जो; समागताः—आये हुए; देव—देवता; ऋषि—ऋषिगण; पितृ—पितरगण; भूतानि—तथा भूत-प्रेत; लोक—लोकों के; पालाः—शासक; सह—सहित; अनुगाः—अनुयायी; पूजिताः—पूजित; तम्—उससे; अनुज्ञाप्य—अनुमति लेकर; स्व—अपने; धामानि—घरों को; ययुः—चले गये; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

तत्पश्चात्, हे राजन्, अत्यन्त सुसंस्कृत पुरोहितजन, महान् वैदिक विशेषज्ञ, जो यज्ञ-साक्षियों के रूप में सेवा कर चुके थे, विशेष रूप से आमंत्रित राजागण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, देवता, ऋषि, पितर, भूत-प्रेत एवं मुख्य लोकपाल तथा उनके अनुयायीगण—ये सारे लोग राजा युधिष्ठिर से पूजे जाने के बाद उनकी अनुमति लेकर अपने अपने घरों के लिए प्रस्थान कर गये।

हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् ।
नैवातृप्यन्प्रशंसन्तः पिबन्मर्त्योऽमृतं यथा ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

हरि—भगवान् कृष्ण के; दासस्य—सेवक के; राज-ऋषेः—राजर्षि के; राजसूय—राजसूय यज्ञ के; महा-उदयम्—महान् उत्सव; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अतृप्यन्—सन्तुष्ट हो गये; प्रशंसन्तः—प्रशंसा करते हुए; पिबन्—पीते हुए; मर्त्यः—मरणशील मनुष्य; अमृतम्—अमृत; यथा—जिस तरह।

वे उस राजर्षि तथा हरि-सेवक द्वारा सम्पन्न अद्भुत राजसूय यज्ञ की प्रशंसा करते अघा नहीं रहे थे, जिस तरह सामान्य व्यक्ति अमृत पीते नहीं अघाता।

ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।
प्रेम्णा निवारयामास कृष्णं च त्यागकातरः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; युधिष्ठिरः राजा—राजा युधिष्ठिर; सुहृत्—अपने मित्रों; सम्बन्धि—सम्बन्धी लोग; बान्धवान्—तथा बान्धव; प्रेम्णा—प्रेम के वशीभूत; निवारयाम् आस—उन्हें रोका; कृष्णम्—कृष्ण को; च—तथा; त्याग—वियोग से; कातरः—दुखी।

उस समय राजा युधिष्ठिर ने अपने अनेक मित्रों, निकट सम्बन्धियों तथा बान्धवों को जाने से रोक लिया, जिनमें कृष्ण भी थे। प्रेम के वशीभूत युधिष्ठिर ने उन्हें जाने नहीं दिया, क्योंकि उन्हें आसन्न विरह की पीड़ा अनुभव हो रही थी।

भगवानपि तत्राङ्ग न्यावात्सीत्तत्प्रियंकरः ।
प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च साम्बादींश्च कुशस्थलीम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—तथा; तत्र—वहाँ; अङ्ग—प्रिय (राजा परीक्षित); न्यावात्सीत्—रह गए; तत्—उसके लिए (युधिष्ठिर के लिए); प्रियम्—आनन्द; करः—करते हुए; प्रस्थाप्य—भेज कर; यदु-वीरान्—यदुवंश के वीरों को; च—तथा; साम्ब-आदीन्—साम्ब इत्यादि; च—तथा; कुशस्थलीम्—द्वारका।

हे परीक्षित, साम्ब तथा अन्य यदु-वीरों को द्वारका वापस भेज कर भगवान् राजा को प्रसन्न करने के लिए कुछ काल तक वहाँ ठहर गए।

इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् ।
सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीद्गतज्वरः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस तरह से; राजा—राजा; धर्म—धर्म के (यमराज); सुतः—पुत्र; मनः-रथ—अपनी इच्छाओं के; महा—विशाल; अर्णवम्—समुद्र को; सु—अत्यन्त; दुस्तरम्—पार करना कठिन; समुत्तीर्य—भलीभाँति पार करके; कृष्णेन—कृष्ण के माध्यम से; आसीत्—हो गया; गत-ज्वरः—ज्वर से मुक्त।

इस तरह धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर भगवान् कृष्ण की कृपा से अपनी इच्छाओं के विशाल एवं दुर्लंघ्य समुद्र को भलीभाँति पार करके अपनी उत्कट महत्त्वाकांक्षा से मुक्त हो गये।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* के पिछले अध्यायों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि राजा युधिष्ठिर विश्व को भगवान् कृष्ण की श्रेष्ठता एवं शरणागतों को प्राप्त आशीषों का प्रदर्शन कराना चाहते थे। ऐसा करने के लिए ही राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया, जो अत्यन्त दुस्सह कार्य है।

इस प्रसंग में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''इस भौतिक जगत में प्रत्येक व्यक्ति की कुछ विशेष प्रकार की इच्छाएँ होती हैं, परन्तु वह उन्हें पूर्ण सन्तुष्टि के साथ पूरी नहीं कर पाता। परन्तु श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अटल भक्ति के कारण महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ निष्पादित करके अपनी सारी इच्छाओं को सफलतापूर्वक पूरा किया। जिस तरह राजसूय यज्ञ सम्पन्न हुआ उसके वर्णन से ऐसा लगता है कि ऐसा उत्सव ऐश्वर्यमयी इच्छाओं का महासागर होता है। साधारण व्यक्ति के लिए ऐसे महासागर को पार कर पाना सम्भव नहीं है। तो भी भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से राजा युधिष्ठिर ने अत्यन्त सहजता से उस सागर को पार कर लिया और इस तरह वे सारी चिन्ताओं से मुक्त हो गये।''

एकदान्तःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् ।
अतप्यद्राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक दिन; अन्तः-पुरे—महल के भीतर; तस्य—उसके (युधिष्ठिर के); वीक्ष्य—देख कर; दुर्योधनः—दुर्योधन; श्रीयम्—ऐश्वर्य; अतप्यत्—दुखी हुआ; राजसूयस्य—राजसूय यज्ञ की; महित्वम्—महानता को; च—तथा; अच्युत-आत्मनः—उसका (युधिष्ठिर का) जिसकी आत्मा भगवान् अच्युत थे।

एक दिन दुर्योधन राजा युधिष्ठिर के महल के ऐश्वर्य को देख कर राजसूय यज्ञ तथा यज्ञकर्ता राजा की महानता से, जिसका जीवन तथा आत्मा अच्युत भगवान् थे, अत्यधिक विचलित हुआ।

यस्मिंस्नरेन्द्रदितिजेन्द्रसुरेन्द्रलक्ष्मी-
नाना विभान्ति किल विश्वसृजोपक्लृप्ताः ।
ताभिः पतीन्द्रुपदराजसुतोपतस्थे
यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिसमें (महल में); नर-इन्द्र—मनुष्यों के राजा के; दितिज-इन्द्र—असुरराज के; सुर-इन्द्र—तथा देवताओं के राजा के; लक्ष्मीः—ऐश्वर्य; नाना—विविध; विभान्ति—प्रकट थे; किल—निस्सन्देह; विश्व-सृजा—विराट स्त्रष्टा (मय दानव); उपक्लृप्ताः—प्रदान किया; ताभिः—उनसे; पतीन्—उसके पति, पाण्डव; द्रुपद-राज—राजा द्रुपद की; सुता—पुत्री, द्रौपदी ने; उपतस्थे—सेवा की; यस्याम्—जिसकी; विषक्त—अनुरक्त; हृदयः—हृदय वाले; कुरु-राट्—कुरु-कुमार दुर्योधन; अतप्यत्—सन्ताप करने लगा।

उस महल में मनुष्यों, दानवों तथा देवताओं के राजाओं के समस्त संचित ऐश्वर्य जगमगा रहे थे, जो विश्व के अन्वेषक मय दानव द्वारा ले आया गया था। उस ऐश्वर्य से द्रौपदी अपने पतियों की सेवा करती थी, किन्तु कुरु-राजकुमार दुर्योधन संतप्त था, क्योंकि वह उसके प्रति अत्यधिक आकृष्ट था।

यस्मिन्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं
श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदङ्घ्रिशोभम् ।
मध्ये सुचारु कुचकुङ्कुमशोणहारं
श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुन्तलाढ्यम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिसमें; तदा—उस समय; मधु—मथुरा के; पतेः—स्वामी की; महिषी—रानियाँ; सहस्रम्—हजारों; श्रोणी—अपने नितम्बों के; भरेण—भार से; शनकैः—धीरे-धीरे; क्वणत्—शब्द करती हुई; अङ्घ्रि—पाँव; शोभम्—शोभा; मध्ये—बीच में (कमर में); सु-चारु—अत्यन्त मनोहर; कुच—उनके स्तनों से; कुङ्कुम—कुंकुम-चूर्ण से; शोण—रक्तिम; हारम्—मोती की माला; श्री-मत्—सुन्दर; मुखम्—मुखों वाली; प्रचल—हिलते, गतिमान्; कुण्डल—कुण्डलों से; कुन्तल—बालों के गुच्छे; आढ्यम्—धनी।

भगवान् मधुपति की हजारों रानियाँ भी महल में ठहरी हुई थीं। उनके पाँव नितम्बों के भार

से धीरे-धीरे गति करते थे और उनके पाँवों के पायजेब मनोहर शब्द करते थे। उनकी कटि अत्यन्त पतली थी, उनके स्तनों पर लगे कुंकुम से उनकी मोती की मालाएँ लाल-लाल हो गयी थीं। उनके हिलते कुण्डलों तथा लहराते बालों से उनके मुखों की भव्य शोभा बढ़ रही थी।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''महाराज युधिष्ठिर के महल में ऐसी सुन्दरियों को देख कर दुर्योधन को ईर्ष्या होने लगी। वह द्रौपदी देवी की सुन्दरता को देख कर विशेष रूप से कामुक तथा ईर्ष्यालु हो उठा क्योंकि पाण्डवों के साथ द्रौपदी के विवाह के समय से ही दुर्योधन उसके प्रति विशेष आकर्षित था। द्रौपदी के स्वयंवर समारोह में दुर्योधन भी उपस्थित था और अन्य राजकुमारों की भाँति वह भी द्रौपदी की सुन्दरता पर मोहित हो उठा था, परन्तु उन्हें प्राप्त करने के प्रयास में वह असफल रहा था।''

सभायां मयक्लृप्तायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् ।
वृतोऽनुगैर्बन्धुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥ ३४॥
आसीनः काञ्चने साक्षादासने मघवानिव ।
पारमेष्ठ्यश्रीया जुष्टः स्तूयमानश्च वन्दिभिः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

सभायाम्—सभाभवन में; मय—मय दानव द्वारा; क्लृप्तायाम्—बनाया; क्व अपि—एक अवसर पर; धर्म-सुतः—यमराज के पुत्र (युधिष्ठिर); अधिराट्—सम्राट; वृतः—घिरे हुए; अनुगैः—अपने सेवकों से; बन्धुभिः—पारिवारिक सदस्यों से; च—तथा; कृष्णेन—भगवान् कृष्ण द्वारा; अपि—भी; स्व—अपनी; चक्षुषा—आँख से; आसीनः—बैठा; काञ्चने—सोने से बने; साक्षात्—स्वयं; आसने—सिंहासन पर; मघवान्—इन्द्र; इव—मानो; पारमेष्ठ्य—ब्रह्मा का, परम सत्ता के; श्रिया—ऐश्वर्य से; जुष्टः—जुड़ा; स्तूयमानः—प्रशंसित होकर; च—तथा; वन्दिभिः—राजकवियों द्वारा।

ऐसा हुआ कि धर्म-पुत्र सम्राट युधिष्ठिर मय दानव द्वारा निर्मित सभाभवन में स्वर्ण सिंहासन पर इन्द्र के समान विराजमान थे। उनके साथ उनके परिचारक तथा परिवार वाले लोगों के अतिरिक्त उनके विशेष नेत्रस्वरूप भगवान् कृष्ण भी थे। साक्षात् ब्रह्मा के ऐश्वर्य को प्रदर्शित कर रहे राजा युधिष्ठिर राजकवियों द्वारा प्रशंसित हो रहे थे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि यहाँ पर भगवान् कृष्ण को युधिष्ठिर की विशेष आँख (नेत्र) कहा गया है, क्योंकि वे ही राजा को सलाह देते थे कि क्या लाभप्रद है और क्या नहीं है।

तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप ।
किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन्नुषा ॥ ३६॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; दुर्योधनः—दुर्योधन; मानी—अभिमानी; परीतः—घिरा हुआ; भ्रातृभिः—अपने भाइयों से; नृप—हे राजा; किरीट—मुकुट; माली—तथा हार पहने; न्यविशत्—प्रविष्ट हुआ; असि—तलवार; हस्तः—हाथ में; क्षिपन्—(द्वारपालों को) अपमानित करते हुए; रुषा—क्रोध से भरा हुआ।

अभिमानी दुर्योधन अपने हाथ में तलवार लिये और मुकुट तथा हार पहने क्रोध से भरा अपने भाइयों के साथ महल में गया। हे राजन्, घुसते समय उसने द्वारपालों का अपमान किया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं कि दुर्योधन ''सदैव ईर्ष्यालु तथा क्रुद्ध रहता था इसलिए थोड़ी-सी उत्तेजना पर वह द्वारपालों से तीखेपन से बोला और क्रोधित हो गया।''

स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रान्तं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् ।
जले च स्थलवद्भ्रान्त्या मयमायाविमोहितः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

स्थले—स्थल पर; अभ्यगृह्णात्—ऊपर उठा लिया; वस्त्र—अपने वस्त्र का; अन्तम्—छोर; जलम्—जल; मत्वा—मान कर; स्थले—तथा अन्य स्थान पर; अपतत्—गिर गया; जले—जल में; च—तथा; स्थल—स्थल; वत्—मानो; भ्रान्त्या—भ्रम से; मय—मय दानव के; माया—जादू से; विमोहितः—मोहग्रस्त।

मय दानव के जादू से निर्मित भ्रम से मोहग्रस्त होकर दुर्योधन ठोस फर्श को जल समझ बैठा, अतः उसने अपने वस्त्र का निचला सिरा ऊपर उठा लिया। अन्यत्र जल को ठोस फर्श समझ लेने से वह जल में गिर गया।

जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयो परे ।
निवार्यमाणा अप्यङ्ग राज्ञा कृष्णानुमोदिताः ॥ ३८॥

शब्दार्थ

जहास—हँस पड़ा; भीमः—भीमसेन; तम्—उसको; दृष्ट्वा—देख कर; स्त्रियः—स्त्रियाँ; नृ-पतयः—राजागण; अपरे—तथा अन्य; निवार्यमाणाः—रोके जाने पर; अपि—भी; अङ्ग—हे प्रिय (परीक्षित); राज्ञा—राजा (युधिष्ठिर) द्वारा; कृष्ण—कृष्ण द्वारा; अनुमोदिताः—समर्थित, सहमत।

हे परीक्षित, यह देख कर भीम हँस पड़े और उसी तरह स्त्रियाँ, राजा तथा अन्य लोग भी हँसे। राजा युधिष्ठिर ने उन्हें रोकना चाहा, किन्तु भगवान् कृष्ण ने अपनी सहमति प्रदर्शित की।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती उल्लेख करते हैं कि राजा युधिष्ठिर ने स्त्रियों तथा भीम को तिरछी नजर से देख कर उनकी हँसी रुकवानी चाही। किन्तु भगवान् कृष्ण ने अपने भौंहों के इशारे से हँसी के लिए अपनी सहमति दे दी। भगवान् इस धरा पर दुष्ट राजाओं का भार दूर करने आये थे और यह घटना भगवान् के अभिप्राय से असम्बद्ध नहीं थी।

स व्रीडितोऽवग्वदनो रुषा ज्वलन्
निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् ।
हाहेति शब्दः सुमहानभूत्सता-
मजातशत्रुर्विमना इवाभवत् ।
बभूव तूष्णीं भगवान्भुवो भरं
समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, दुर्योधन; व्रीडितः—उद्विग्न; अवाक्—हक्का-बक्का; वदनः—मुख; रुषा—क्रोध से; ज्वलन्—जलता हुआ; निष्क्रम्य—बाहर निकल कर; तूष्णीम्—चुपके से; प्रययौ—चला गया; गज-आह्वयम्—हस्तिनापुर; हा-हा इति—हाय हाय; शब्दः—शब्द; सु-महान्—भीषण; अभूत्—उठा; सताम्—सन्त-पुरुषों से; अजात-शत्रुः—राजा युधिष्ठिर; विमनाः—उदास; इव—कुछ कुछ; अभवत्—हो गया; बभूव—था; तूष्णीम्—मौन; भगवान्—भगवान्; भुवः—पृथ्वी का; भरम्—भार; समुज्जिहीर्षुः—हटाने की इच्छा से; भ्रमति स्म—(दुर्योधन) ठगा गया; यत्—जिसकी; दृशा—दृष्टि से।

लज्जित एवं क्रोध से जलाभुना दुर्योधन अपना मुँह नीचा किये, बिना कुछ कहे, वहाँ से निकल गया और हस्तिनापुर चला गया। उपस्थित सन्त-पुरुष जोर-जोर से कह उठे, ''हाय! हाय!'' और राजा युधिष्ठिर कुछ दुखी हो गये। किन्तु भगवान्, जिनकी चितवन् मात्र से दुर्योधन मोहित हो गया था, मौन बैठे रहे, क्योंकि उनकी मंशा पृथ्वी के भार को हटाने की थी।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''जब दुर्योधन इतना क्रोधित होकर वहाँ से चला गया तो सबों ने इस घटना पर खेद प्रकट किया और महाराज युधिष्ठिर भी बहुत उदास हो गये। परन्तु इन सब घटनाओं के बावजूद भी कृष्ण शान्त थे। वे घटना के पक्ष में या विरोध में कुछ नहीं बोले। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि भगवान् श्रीकृष्ण की परम इच्छा के कारण वह इस भ्रम में डाला गया था। इस प्रकार यह कुरुवंश के दो पक्षों में शत्रुता का सूत्रपात था। ऐसा प्रतीत होता था कि यह संसार के भार को कम करने के कृष्ण के उद्देश्य की योजना का एक अंश था।''

एतत्तेऽभिहितं राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।
सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; ते—तुमसे; अभिहितम्—कहा गया; राजन्—हे राजन; यत्—जो; पृष्टः—पूछा गया; अहम्—मैंने; इह—इस सम्बन्ध में; त्वया—तुम्हारे द्वारा; सुयोधनस्य—सुयोधन (दुर्योधन) का; दौरात्म्यम्—असंतोष; राजसूये—राजसूय यज्ञ के दौरान; महा-क्रतौ—महान् यज्ञ।

हे राजन्, अब मैं तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दे चुका हूँ कि दुर्योधन महान् राजसूय यज्ञ के अवसर पर क्यों असन्तुष्ट था।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''दुर्योधन का मानमर्दन'' नामक पचहत्तरवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।